SHODH SAMAGAM

ISSN : 2581-6918 (Online), 2582-1792 (PRINT)

विधान निर्माण के व्यवसाय का विकासः तेजी से बदलते डिजिटल नियमों के संदर्भ में संहिताकरण के प्रति सैविग्नी के विरोध की एक आधुनिक आलोचना

सुदीप सार्वा, शोध निर्देशक, **शिव कुमार कुर्रे,** पीएच–डी., विधि विभाग
कैलाश कुमार नेताम, शोधार्थी, एलएल.एम.–भाग–1 (द्वितीय सेमेस्टर)
शा. जे. योगानंदम छत्तीसगढ़ महाविद्यालय, रायपुर, छत्तीसगढ़, भारत

ORIGINAL ARTICLE

Authors
सुदीप सार्वा, शोध निर्देशक
शिव कुमार कुर्रे, पीएच–डी.
कैलाश कुमार नेताम, शोधार्थी
E-mail : lawschoolcg@gmail.com

shodhsamagam1@gmail.com

Received on : 06/02/2026
Revised on : 09/04/2026
Accepted on : 18/04/2026
Overall Similarity : 00% on 10/04/2026

Plagiarism Checker X - Report
Originality Assessment
0%
Overall Similarity

Date: Apr 10, 2026 (07:11 AM)
Matches: 0 / 2569 words
Sources: 0

Remarks: No similarity found, your document looks healthy.

Verify Report: Scan this QR Code

शोध सार

विधान को अंग्रेजी भाषा में लेजिस्लेशन कहते हैं जो स्वयं और लेशियो नामक दो लैटिन शब्दों के योग से बना है। लैटिन भाषा में लेजिस शब्द का अर्थ है विधि तथा लेशियो का अर्थ है अतः विधान का शाब्दिक अर्थ है विधि की प्रस्थापना या निर्माण करना। विधि–निर्माण में विधान को सबसे प्रबल, प्रमुख एवं आधिकारिक स्त्रोत माना गया है क्योंकि इसे प्राचीन विधियों को निरसित करने तथा वर्तमान विधियों में संशोधन करने की शक्ति प्राप्त है। विधान की महत्ता प्रतिपादित करते हुए रास्को पाउंड ने कहा है कि विधि के तीन प्रमुख प्रयोजन हैं–(1) समाज में स्थिरता लाना (2) समाज के प्रत्येक व्यक्ति की अधिकतम स्वाधीनता सुनिश्चित करना, तथा (3) मानव की अधिकतम संतुष्टि। उपर्युक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिए विधि के निश्चित नियमों की आवश्यकता हुई जिससे न्याय प्रशासन सुगमतापूर्वक संचालित हो सके। प्राचीन काल में जब विधान जैसी कोई विधि–निर्मात्री शक्ति अस्तित्व में नहीं थी, उस समय प्रथाएँ तथा प्राकृतिक विधि या दैवी विधि के नियमों के आधार पर न्याय व्यवस्था संचालित होती थी, परन्तु समाज के विकास एवं प्रगति के साथ–साथ यह अनुभव होने लगा कि प्रथाएँ तथा प्राकृतिक या दैवी नियम समाज में न्याय व्यवस्था कायम रखने के लिए अपर्याप्त हैं, क्योंकि इन्हें विधि का रूप ग्रहण करने में पर्याप्त समय लगता है। जब तक कोई प्रथा विधि का नियम बन पाये तब तक सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार नई प्रथाएँ जन्म लेती हैं। अतः इस कमी को दूर करने के लिए विधान की आवश्यकता प्रतीत होती है। विधान एक ऐसा साधन है जो प्रथाओं तथा सामाजिक आवश्यकताओं या लोकमत के बीच के रिक्त स्थान की पूर्ति करता है।

मुख्य शब्द

विधान निर्माण, डिजिटल, संहिताकरण, सैविग्नी, समाज.

प्रस्तावना

विधि के स्रोत के रूप में विधान को सर्वाधिक महत्व प्राप्त है। इसके दो प्रमुख कारण हैं– प्रथम यह कि वर्तमान राज्य–व्यवस्था में विधान मण्डलों द्वारा निर्मित विधि को ही कानून के रूप में स्वीकार किया जाता है, क्योंकि इसे राज्य की संप्रभु–शक्ति का बल प्राप्त है दूसरे, विधान–मण्डल के सदस्य जन–प्रतिनिधि होने के कारण इनके द्वारा पारित विधि को लोकमत का समर्थन प्राप्त रहता है। डायस एण्ड ह्वाज ने अपने ज्यूरिसप्रूडेन्स नामक ग्रन्थ में विधान शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि किसी प्राधिकारिक शक्ति द्वारा विधि को विमर्शपूर्वक (सोच–समझकर) एक निर्धारित ढाँचे में डालने की प्रक्रिया को विधान कहते हैं, बशर्ते कि उस प्राधिकारिक शक्ति को न्यायालय ने विधि–निर्माण के लिए सक्षम शक्ति के रूप में मान्य किया हो। इसमें संदेह नहीं कि विधान आवश्यक रूप से आधुनिक युग की देन है जिसके द्वारा सुसभ्य समाज में न्याय व्यवस्था स्थापित करना सुगम हो गया है।

मानव सभ्यता के विकास के साथ इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि वर्तमान समय में विधान को एकमात्र विधि का अनन्य स्रोत माना जाने लगा है। भारत के संविधान के अन्तर्गत संसद को सर्वोच्च विधायनी शक्ति प्रदत्त है जबकि अमेरिका में यह शक्ति यू० एस० कांग्रेस को प्राप्त है। इसके साथ ही विधि के स्रोत के रूप में रूढ़ि या प्रथा का महत्व तो लुप्तप्राय हो हो गया है जबकि न्यायालयों द्वारा दिये गये निर्णय तथा पूर्व–निर्णय भी स्वयं विधि को निर्मित नहीं करते अपितु किसी प्रचलित विधि में संशोधन करने या उसे निराकृत किये जाने हेतु संगद को निर्देश मात्र दे सकते हैं तथापि संसद द्वारा पारित विभि की वैधता को सक्षम न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है।

विधान निर्माण के व्यवसाय का विकास

किसी राष्ट्र और उसकी विधि में ऐतिहासिक संबंध स्थापित करते हुए सैविग्नी ने स्पष्ट किया कि किसी राष्ट्र के विकास के साथ–साथ वहाँ की विधि भी विकसित होती रहती है। जब राष्ट्र में बेतना उत्पन्न होती है तो वहाँ की विधि भ्वी प्रभावोत्पादक हो जाती है परन्तु जब राष्ट्र अपनी राष्ट्रीयता खो देता है, तो विधि का विनाश हो जाता है। सैविग्नी ने राष्ट्र शब्द की व्याख्या करते हुए स्पष्ट किया कि इसका तात्पर्य उस मानव–समुदाय से है जो सामयिक, ऐतिहासिक तथा भौगोलिक श्रृंखलाओं द्वारा एक–दूसरे से सुत्रबद्ध हैं। सारांश यह है कि सैविग्नी ने विधि को जन जीवन की सामान्य श्लोक–चेतनाश का प्रतीक माना है इसीलिये उनके विचारों को श्लोक चेतना का सिद्धान्त की संज्ञा दी गयी है। सैविग्नी का स्पष्ट मत था कि यदि विधि के स्वाभाविक विकास से किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न हो जाती है, तो देश में अराजकता और अशांति फैलना अवश्यंभावी है जो जनता के लिए कष्टदायी होती है सैविग्नी ने परम्परा पर आधारित विधि के ऐतिहासिक विकास का समर्थन करते हुए विधि के संहिताकरण का कड़ा विरोध किया।

सैविग्नी ने बर्फ और यूगो के विचारों से प्रेरणा लेते हुए विधि के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाये जाने पर विशेष बल दिया। जर्मनी की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों के कारण सैविग्नी की विचारधारा को प्रचण्ड समर्थन प्राप्त हुआ। नेपोलियन के युद्ध के पश्चात् जर्मनी में प्रचलित विधियों को संहिताबद्ध करने का प्रश्न उठा। उस समय वहाँ विभिन्न स्थानों में भिन्न–भिन्न विधियाँ प्रचलित थीं। फ्रांसीसी सिविल कोड से अत्यधिक प्रभावित होकर हेडेलबर्ग के प्रोफेसर चौबॉट ने जर्मन विधियों के संहिताकरण की आवश्यकता प्रतिपादित किया परन्तु इस कार्य में अनेक बाधाएँ उत्पन्न होने की आशंका थी। इसका मुख्य कारण यह था कि ये विधियाँ स्थानीय जनता के आचार तथा व्यवहार में अतीत काल से बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप के प्रचलित चली आ रही थीं, अतः इनके नवीनीकरण के प्रश्न को लेकर संघर्ष की स्थिति उत्पान होने की संभावना थी। यह तर्क और परम्परा के बीच संघर्ष था साथ ही यह इतिहास का राज्य को स्वेच्छा के विरुद्ध तथा मानव द्वारा बनाई गयी विधियों का विधि के स्वाभाविक विकास के प्रति संघर्ष था। सैविग्नी ने परम्परा पर आधारित विधि के ऐतिहासिक विकास का समर्थन करते हुए विधि के संहिताकरण का कड़ा विरोध किया। यहीं से विधि की ऐतिहासिक विचारधारा का सूत्रपात हुआ।

1. **सैविग्नी का लोक चेतना का सिद्धान्तः** सैविग्नी के अनुसार विधि केवल अमूर्त सिद्धान्तों और नियमों का संग्रह मात्र नहीं है अपितु वह किसी समुदाय विशेष या देश विशेष के व्यक्तियों की आन्तरिक आवश्यकताओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति है। विधि की उत्पत्ति आक्तियों के पारस्परिक सहयोग से हुई है। ऐतिहासिक आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक अवस्था में विधि को मानव स्वभाव और आचरण का एक अविच्छिन्न अंग माना गया था। सैविग्नी ने ह्यूगो के इस विचार से सहमति व्यक्त की है कि मानव सभ्यता के प्राथमिक चरण में ही विधि ने विभिन्न समुदायों की भाषा, रीति–रिवाजों तथा गठन के अनुसार स्वरूप ग्रहण कर लिया था। वस्तुतः किसी समाज विशेष के गठन तथा उसकी भाषा और रीति–रिवाजों को वहाँ की विधि से पृथक् नहीं रखा जा सकता है, ये सभी एक दूसरे में पूर्णतः

घुल–मिल जाते हैं। उनका दृढ़ विश्वास था कि विधि की उत्पत्ति लोक चेतना पर ही आधारित है और जब तक इसे जन समर्थन प्राप्त रहता है यह प्रगति करती रहती है लेकिन लोक समर्थन समाप्त होते ही विधि का महत्व समाप्त हो जाता है।

2. **डिजिटल युग में तीव्र परिवर्तन बनाम धीमी परंपरागत विकास:** सैविग्नी का मॉडल धीरे–धीरे विकसित होने वाले समाज पर आधारित था, जबकि आज डिजिटल तकनीक बहुत तेज़ी से बदल रही है। ऐसे में अगर कानून को केवल परंपरागत विकास पर छोड़ दिया जाए, तो वह इन नई चुनौतियों (जैसे साइबर अपराध, डेटा सुरक्षा) से पीछे रह जाएगा।
3. **वैश्वीकरण और सीमाहीन डिजिटल दुनिया:** डिजिटल दुनिया में सीमाएँ लगभग खत्म हो चुकी हैं। एक देश में बना डिजिटल नियम दूसरे देशों को भी प्रभावित करता है। सैविग्नी का "राष्ट्रीय आत्मा" का सिद्धांत आज के ग्लोबल इंटरनेट के संदर्भ में सीमित और अपर्याप्त माना जाता है। आज एकरूपता के लिए अंतरराष्ट्रीय स्तर पर संहिताबद्ध नियमों की जरूरत है (जैसे डेटा प्रोटेक्शन कानून)।
4. **कानूनी निश्चितता की आवश्यकता:** डिजिटल लेन–देन में स्पष्ट और निश्चित नियम जरूरी हैं। संहिताकरण से कानून स्पष्ट और सुलभ बनता है, जबकि केवल न्यायिक निर्णयों या परंपरा पर आधारित प्रणाली में अनिश्चितता बढ़ सकती है। आधुनिक व्यवसायों को चाहिए, जो सैविग्नी के दृष्टिकोण में कमजोर है।
5. **टेक्नोलॉजी–चालित जोखिमों का प्रबंधन:** ए.आई. बिग डेटा, और साइबर सुरक्षा से जुड़े जोखिम बहुत जटिल हैं।इनका समाधान "धीरे–धीरे विकसित होने वाले" कानून से नहीं, बल्कि और सेंू से ही संभव है। उदाहरण: डेटा प्राइवेसी या एथिक्स के लिए स्पष्ट संहिताएँ जरूरी हैं।
6. **लोकतांत्रिक वैधता:** सैविग्नी न्यायाधीशों और परंपरा पर ज्यादा भरोसा करते थे, लेकिन आज, कानून बनाने की प्रक्रिया में संसद और जन–प्रतिनिधियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। संहिताकरण से कानून अधिक पारदर्शी और लोकतांत्रिक बनता है।
7. **डिजिटल समावेशन:** आज आम नागरिक भी डिजिटल प्लेटफॉर्म्स का उपयोग करते हैं। संहिताबद्ध कानून सरल और समझने योग्य होते हैं, जिससे आम लोगों के लिए अधिकारों और कर्तव्यों को समझना आसान होता है। सैविग्नी का जटिल और विकासशील कानून मॉडल आम जनता के लिए कम सुलभ हो सकता है, सैविग्नी का संहिताकरण–विरोध उस समय के संदर्भ में उचित था, जब समाज अपेक्षाकृत स्थिर और स्थानीय था लेकिन आज के तेजी से बदलते, वैश्विक और डिजिटल समाज में उनकी सोच सीमित प्रतीत होती है। आधुनिक दृष्टिकोण यह मानता है कि कानून को समाज से विकसित होना चाहिए का योगदान, लेकिन साथ ही उसे समय–समय पर संहिताबद्ध और अद्यतन भी किया जाना चाहिए ताकि वह डिजिटल चुनौतियों का प्रभावी ढंग से सामना कर सके।

साहित्य समीक्षा

लोक–चेतना के सिद्धान्त की आलोचना इसमें संदेह नहीं कि सैविग्नी के विचार तत्कालीन जर्मन समाज की भावनाओं के अनुकूल होते हुए भी उनमें भावुकता और काल्पनिकता का अंश अधिक था। अनेक विधिशास्त्रियों ने सैविग्नी के श्लोक चेतना के सिद्धान्त की आलोचना की है। सैविग्नी के इस कथन का खण्डन करते हुए कि विधि किसी समुदाय या समाज–विशेष की इच्छा की अभिव्यक्ति होती है, डॉ० एलेन कहते हैं कि यदि ऐसा होता, तो रोमन विधि समस्त यूरोप में सफल नहीं हो पाती क्योंकि यह विधि यूरोपीय जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति नहीं थी। यह कहना उचित नहीं है कि विधि सदैव ही जनता की इच्छा की अभिव्यक्ति होती है। कभी–कभी विधि के विकास में व्यक्ति विशेष के योगदान का अत्यधिक महत्व रहता है चाहे वह व्यक्ति विदेशी नागरिक ही क्यों न हो। उदाहरण के लिए न्यायाधीश कोक तथा लिटिलटन ने विधि को केवल विकसित ही नहीं किया वरन् उसे एक नई दिशा भी प्रदान की। यद्यपि सैविग्नी द्वारा विधि के प्रति अपनाई गई ऐतिहासिक पद्धति विधि की संकल्पनाओं का खण्डन करती है तथा प्राकृतिक विधि के प्रति विरोध प्रकट करती है, परन्तु वास्तव में सैविग्नी का श्लोक–चेतना का सिद्धान्त जिसे उन्होंने ''वोल्कजिस्ट'' कहा है, स्वयं ही बाह्य तथ्यों पर आधारित एक आदर्शात्मक कल्पनामात्र है। अनेक विधियों का निर्माण जन–चेतना की अदृश्य अभिव्यक्ति पर आधारित न होकर मानव समुदाय के परस्पर संघर्षों के कारण आवश्यक हो जाता है, जो सैविग्नी के सिद्धान्त के अनुकूल नहीं है।

फ्रेडरिक कार्ल वॉन सैविग्नी ने संहिताकरण का विरोध यह कहकर किया था कि कानून समाज की "आत्मा" से स्वाभाविक रूप से विकसित होता है, न कि उसे कृत्रिम रूप से एक संहिता में बाँधा जाना चाहिए लेकिन आज के तेजी से बदलते डिजिटल युग में उनके इस दृष्टिकोण की कई आधुनिक आलोचनाएँ सामने आती हैं। सैविग्नी का जटिल और विकासशील कानून मॉडल

आम जनता के लिए कम सुलभ हो सकता है। सैविग्नी का संहिताकरण–विरोध उस समय के संदर्भ में उचित था, जब समाज अपेक्षाकृत स्थिर और स्थानीय था लेकिन आज के तेजी से बदलते, वैश्विक और डिजिटल समाज में उनकी सोच सीमित प्रतीत होती है।

कार्य प्रणाली

विधिशास्त्रीय चिन्तन में सैविग्नी का योगदान वास्तव में देखा जाये तो सैविग्नी द्वारा प्रतिपादित जन–चेतना के सिद्धान्त के फलस्वरूप ही उत्तरवर्ती मानवशास्त्रीय विचारकों ने विधिशास्त्र को समाजशास्त्र से जोड़ने में योगदान किया जिनमें हेनरीमेन, रास्को पाउण्ड तथा स्वीडन एवं अमरीकी वास्तविकतावादी विधिशास्त्रियों का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

सैविग्नी के प्रगतिवादी तथा व्यावहारिक विधि सिद्धान्त से प्रेरणा लेते हुये बीसवीं सदी के समाजशास्त्रीय विधिज्ञों ने समाज के लिये विकासोन्मुख विधियों की आवश्यकता को विशेष महत्व दिया। यद्यपि सैविग्नी के जन–चेतना के सिद्धान्त को विधि के विकास में क्रान्तिकारी पहल माना जाता है, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इसी के कारण कालान्तर में समाजशास्त्रीय विधिशास्त्र का उद्भव एवं विकास हुआ, जिसे वर्तमान समय में प्रायः सभी प्रगतिशील देशों ने स्वीकार कर लागू किया है।

विश्लेषण

विधि के प्रति ऐतिहासिक दृष्टिकोण अपनाने वाले विधिशास्त्रियों ने विधि की उत्पत्ति और विकास का विवेचन ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर किया है। इस सिद्धान्त के अनुसार विधि में होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में किया जाना चाहिए तथा उन परिस्थितियों पर विचार किया जाना चाहिए जिनमें विधि–विशेष को निर्मित किया गया था। यही कारण है कि फ्रेडरिक पोलक (Fredrick Pollock) ने कहा है कि वास्तव में ऐतिहासिक पद्धति मानव समाज और उसकी विधिक संस्थाओं के सिद्धान्त के अलावा और कुछ नहीं है। इस विचारधारा के प्रवर्तक राज्य के प्रति विधि के सम्बन्ध को महत्व न देकर उन सामाजिक प्रथाओं को महत्व देते हैं जिनमें से विधि का निर्माण हुआ। ऐतिहासिक विधि–शास्त्री के लिए श्विधिश् एक ऐसा रूढ़िजन्य नियम है जिसका विकास ऐतिहासिक आवश्यकता तथा लोकप्रिय प्रणाली से हुआ है। इंग्लैण्ड और भारत जैसी रूढ़ि प्रधान विधि व्यवस्थाओं के विकास में ऐतिहासिक विचारधारा का पर्याप्त महत्व रहा है।

चर्चा

विधिशास्त्र की ऐतिहासिक विचारधारा के समर्थकों ने विधि के विकास के लिए उसके ऐतिहासिक क्रमिक विकास के अध्ययन को आवश्यक माना है। विधि की तुलनात्मक अध्ययन पद्धति को विकसित करने का वास्तविक श्रेय ऐतिहासिक विधिशास्त्रियों को ही है जिसके परिणामस्वरूप विधि के चिन्तन को एक नयी दिशा मिली। ऐतिहासिक विचारधारा के समर्थकों का तर्क है कि विधि बनायी जाने के बजाय उसे अतीत से खोजा जाना चाहिए क्योंकि उसका स्वअस्तित्व होता है। वे प्रथा को विधि का औपचारिक स्रोत मानते हुए उसके बन्धनकारी प्रभाव को स्वीकार करते हैं। इन विधिशास्त्रियों के अनुसार विधायन तथा न्यायिक पूर्वोक्तियाँ प्रथाओं को बल नहीं देतीं वरन् उनका अपना स्वयं का मूल्य होता है। विधि का निर्माण इनके आधार पर नहीं किया जाता अपितु वह जैविक प्रक्रिया से स्वयं साकार रूप लेती रहती है। इसी प्रकार विधि सभी देशों में एक–सी नहीं होती क्योंकि विभिन्न देशों के रीति–रिवाजों, सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों तथा परिस्थितियों के अनुसार उनमें भिन्नता होना स्वाभाविक है। ऐतिहासिक विचारधारा के समर्थकों ने विधि के निर्माण में अधिवक्ताओं की भूमिका को महत्त्वपूर्ण माना है क्योंकि अपने विधिक अनुभव के कारण विधायन कार्य में उनका महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

निष्कर्ष

भारतीय विधि के विकास में ऐतिहासिक विधिशास्त्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान संभवतः यह रहा है कि इसने भारत में सदियों पुरानी प्रचलित भेदभावपूर्ण तथा शोषणकारी विधियों का निर्मूलन कर उनके स्थान पर सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक न्याय प्रणाली प्रस्थापित करने में सहायता को है। अस्पृश्यता निवारण, बाल मजदूरी निर्मूलन, बंधुआ मजदूरी पर रोक, समान कार्य के लिए समान पारिश्रमिक, सतीप्रथा उन्मूलन, दलितों के उत्थान हेतु उन्हें नौकरियों तथा शिक्षा संस्थानों में आरक्षण तथा विशेष अनुदान आदि सम्बन्धी वर्तमान कानून यह दर्शाते हैं कि भारतीय न्याय व्यवस्था सतत् प्रगति के मार्ग पर अग्रसर है।

इस संदर्भ में यह भी उल्लेखनीय है कि किसी विधि विशेष की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि उस विधि के निर्वचन में न्यायाधीश की पर्याप्त सहायक होती है तथा सामाजिक परिवर्तनों के कारण वह विधि अनुपयोगी या अप्रयोज्य हो जाने पर उसमें

समयानुकूल संशोधन करने में भी पर्याप्त सहायता मिलती है। भारत में स्वतन्त्रता के पश्चात् भूमि सुधार कानून तथा उत्तराधिकार, तलाक, दायाधिकार, बाल विवाह या दहेज निरोध आदि सम्बन्धी विधियां इसके ज्वलन्त दृष्टान्त हैं। इससे स्पष्ट होता है कि दो सदियां बीत जाने पर भी ऐतिहासिक विचारधारा के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है क्योंकि ऐसा करना विधि के विकास की दृष्टि से अव्यावहारिक होगा तथा विधि के विकास में गतिरोध उत्पन्न हो जायेगा।

संदर्भ सूची

1. परान्जपे, एन.वी. (2019) *विधि शास्त्र तथा विधि का सिद्धांत.* सेंट्रल लॉ एजेंसी, मोतीलाल नेहरू रोड, प्रयागराज, आईएसबीएन 978–81–941659–3–4।
2. प्रसाद, अनिरूद्ध (2016) *विधि शास्त्र के मूल सिद्धांतः ऐतिहासिक विचारधारा और विकासवादी सिद्धांत.* इस्टर्न बुक कम्पनी, लखनऊ, आईएसबीएन–798–93–514533–1–4।
3. शर्मा, शिवदत्त (2004) *विधि शास्त्र–ऐतिहासिक विचारधारा.* विधि साहित्य प्रकाशन, (विधायी विभाग) विधि और न्याय मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।

****